



## भारतीयदर्शनशास्त्र मे जगद्गुरुशंकराचार्यजी के विशेष अवदान

सञ्जीव सरकार

शोधछात्र (Ph.D) अद्वैतवेदान्तविभाग, राष्ट्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपति

### प्रस्तावना

आदि शंकर भगवान् शंकर के साक्षात् अवतार थे। ये भारत के एक महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक थे। उन्होने अद्वैत वेदान्त को ठोस आधार प्रदान किया। उन्होने सनातन धर्म की विविध विचारधाराओं का एकीकरण किया। उपनिषदों और वेदांतसूत्रों पर लिखी हुई इनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना की थी जो अभी तक बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं और जिन पर आसीन संन्यासी 'शंकराचार्य' कहे जाते हैं। वे चारों स्थान ये हैं- (१) ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम, (२) शृंगेरी पीठ, (३) द्वारिका शारदा पीठ और (४) पुरी गोवर्धन पीठ। इन्होंने अनेक विधर्मियों को भी अपने धर्म में दीक्षित किया था। ये शंकर के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों की बड़ी ही विशद और रोचक व्याख्या की है।

उनके विचारोपदेश आत्मा और परमात्मा की एकरूपता पर आधारित हैं जिसके अनुसार परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों में रहता है। स्मार्त संप्रदाय में आदि शंकराचार्य को शिव का अवतार माना जाता है।

इन्होंने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक और छान्दोग्योपनिषद् पर भाष्य लिखा। वेदों में लिखे ज्ञान को एकमात्र ईश्वर को संबोधित समझा और उसका प्रचार तथा वार्ता पूरे भारतवर्ष में की। उस समय वेदों की समझ के बारे में मतभेद होने पर उत्पन्न चार्वाक, जैन और बौद्ध मतों को शास्त्रार्थों द्वारा खण्डित किया

और भारत में चार कोनों पर ज्योति, गोवर्धन, शृंगेरी एवं द्वारिका आदि चार मठों की स्थापना की।

कलियुग के प्रथम चरण में विलुप्त तथा विकृत वैदिक ज्ञानविज्ञान को उद्भासित और विशुद्ध कर वैदिक वाङ्मय को दार्शनिक, व्यावहारिक, वैज्ञानिक धरातल पर समृद्ध करने वाले एवं राजर्षि सुधन्वा को सार्वभौम सम्राट् ख्यापित करने वाले चतुराम्नाय-चतुष्पीठ संस्थापक नित्य तथा नैमित्तिक युग्मावतार श्रीशिवस्वरूप भगवत्पाद शंकराचार्य की अमोघदृष्टि तथा अद्भुत कृति सर्वथा स्तुत्य है।

सतयुग की अपेक्षा त्रेता में, त्रेता की अपेक्षा द्वापर में तथा द्वापर की अपेक्षा कलि में मनुष्यों की प्रज्ञाशक्ति तथा प्राणशक्ति एवं धर्म और आध्यात्म का हास सुनिश्चित है। यही कारण है कि कृतयुग में शिवावतार भगवान् दक्षिणामूर्ति ने केवल मौन व्याख्यान से शिष्यों के संशयों का निवारण किया। त्रेता में ब्रह्मा, विष्णु और शिव अवतार भगवान् दत्तात्रेय ने

सूत्रात्मक वाक्यों के द्वारा अनुगतों का उद्धार किया। द्वापर में नारायणावतार भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने वेदों का विभाग कर महाभारत तथा पुराणादि की एवं ब्रह्मसूत्रों की संरचनाकर एवं शुक लोमहर्षणादि कथाव्यासों को प्रशिक्षितकर धर्म तथा आध्यात्म को उज्जीवित रखा। कलियुग में भगवत्पाद श्रीमद् शंकराचार्य ने भाष्य, प्रकरण तथा स्तोत्रग्रन्थों की संरचना कर, विधर्मियों-पन्थायियों एवं मीमांसकादि से शास्त्रार्थ, परकायप्रवेशकर, नारदकुण्ड से अर्चाविग्रह श्री बदरीनाथ एवं भूगर्भ से अर्चाविग्रह श्रीजगन्नाथ दारुब्रह्म को प्रकटकर तथा प्रस्थापित कर, सुधन्वा सार्वभौम को राजसिंहासन समर्पित कर एवं चतुराम्नाय - चतुष्पीठों की

स्थापना कर अहर्निश अथक परिश्रम के द्वारा धर्म और आध्यात्म को उज्जीवित तथा प्रतिष्ठित किया।

व्यासपीठ के पोषक राजपीठ के परिपालक धर्माचार्यों को श्रीभगवत्पाद ने नीतिशास्त्र, कुलाचार तथा श्रौत-स्मार्त कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड के यथायोग्य प्रचार-प्रसार की भावना से अपने अधिकार क्षेत्र में परिभ्रमण का उपदेश दिया। उन्होंने धर्मराज्य की स्थापना के लिये व्यासपीठ तथा राजपीठ में सद्भावपूर्ण सम्वाद के माध्यम से सामंजस्य बनाये रखने की प्रेरणा प्रदान की। ब्रह्मतेज तथा क्षात्रबल के साहचर्य से सर्वसुमंगल कालयोग की सिद्धि को सुनिश्चित मानकर कालगर्भित तथा कालातीतदर्शी आचार्य शंकर ने व्यासपीठ तथा राजपीठ का शोधनकर दोनों में सैद्धान्तिक सामंजस्य साधा।

### जीवनचरित

शंकर आचार्य का जन्म 508 ई. पू. केरल में कालपी अथवा 'काषल' नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम शिवगुरु भट्ट और माता का नाम सुभद्रा था। बहुत दिन तक सपत्नीक शिव को आराधना करने के अनंतर शिवगुरु ने पुत्र-रत्न पाया था, अतः उसका नाम शंकर रखा। जब ये तीन ही वर्ष के थे तब इनके पिता का देहांत हो गया। ये बड़े ही मेधावी तथा प्रतिभाशाली थे। छह वर्ष की अवस्था में ही ये प्रकांड पंडित हो गए थे और आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। इनके संन्यास ग्रहण करने के समय की कथा बड़ी विचित्र है। कहते हैं, माता एकमात्र पुत्र को संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं देती थीं। तब एक दिन नदीकिनारे एक मगरमच्छ ने शंकराचार्यजी का पैर पकड़ लिया तब इस वक्त का फायदा उठाते शंकराचार्यजी ने अपने माँ से कहा " माँ मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दो नहीं तो हे मगरमच्छ मुझे खा जायेगी ", इससे भयभीत होकर माता ने तुरंत इन्हें संन्यासी होने की आज्ञा प्रदान की ; और आश्चर्य की बात है की, जैसे ही माता ने आज्ञा दी वैसे तुरन्त मगरमच्छ ने शंकराचार्यजी का पैर छोड़ दिया। और इन्होंने गोविन्द नाथ से संन्यास ग्रहण किया।

पहले ये कुछ दिनों तक काशी में रहे, और तब इन्होंने विजिलबिंदु के तालवन में मण्डन मिश्र को सपत्नीक शास्त्रार्थ में परास्त किया। इन्होंने समस्त भारतवर्ष में भ्रमण करके बौद्ध धर्म को मिथ्या प्रमाणित किया तथा वैदिक धर्म को पुनरुज्जीवित किया। कुछ बौद्ध इन्हें अपना शत्रु भी समझते हैं,

क्योंकि इन्होंने बौद्धों को कई बार शास्त्रार्थ में पराजित करके वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की।

३२ वर्ष की अल्प आयु में सन् 475 ईसा पूर्व में केदारनाथ के समीप स्वर्गवासी हुए थे।

### प्रमुख कार्य

शंकर दिग्विजय, शंकरविजयविलास, शंकरजय आदि ग्रन्थों में उनके जीवन से सम्बन्धित तथ्य उद्धाटित होते हैं। दक्षिण भारत के केरल राज्य (तत्कालीन मालाबारप्रांत) में आद्य शंकराचार्य जी का जन्म हुआ था। उनके पिता शिव गुरु तैत्तिरीय शाखा के यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। भारतीय प्राच्य परम्परा में आद्यशंकराचार्य को शिव का अवतार स्वीकार किया जाता है। कुछ उनके जीवन के चमत्कारिक तथ्य सामने आते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि वास्तव में आद्य शंकराचार्य शिव के अवतार थे। आठ वर्ष की अवस्था में श्रीगोविन्द नाथ के शिष्यत्व को ग्रहण कर संन्यासी हो जाना, पुनः वाराणसी से होते हुए बद्रीकाश्रम तक की पैदल यात्रा करना, सोलह वर्ष की अवस्था में बद्रीकाश्रम पहुंच कर ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखना, सम्पूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण कर अद्वैत वेदान्त का प्रचार करना, दरभंगा में जाकर मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ कर वेदान्त की दीक्षा देना तथा मण्डन मिश्र को संन्यास धारण कराना, भारतवर्ष में प्रचलित तत्कालीन कुरीतियों को दूर कर समभावदर्शी धर्म की स्थापना करना - इत्यादि कार्य इनके महत्व को और बढ़ा देता है। चार धार्मिक मठों में दक्षिण के शृंगेरी शंकराचार्यपीठ, पूर्व (ओडिशा) जगन्नाथपुरी में गोवर्धनपीठ, पश्चिम द्वारिका में शारदामठ तथा बद्रीकाश्रम में ज्योतिर्पीठ भारत की एकात्मकता को आज भी दिग्दर्शित कर रहा है। कुछ लोग शृंगेरी को शारदापीठ तथा गुजरात के द्वारिका में मठ को काली मठ कहते हैं। उक्त सभी कार्य को सम्पादित कर 32वर्ष की आयु में ब्रह्मलीन हुए।

दशनाम गोस्वामी समाज (सरस्वती, गिरि, पुरी, बन, भारती, तीर्थ, सागर, अरण्य, पर्वत और आश्रम) की सस्थापना कर, हिंदू धर्मगुरु के रूप में हिंदुओं के प्रचार प्रसार व रक्षा का कार्य सौपा और उन्हें अपना आध्यात्मिक उत्तराधिकारी भी बताया शास्त्रीय प्रमाण

सर्गे प्राथमिके प्रयाति विरतिं मार्गे स्थिते दौर्गते  
स्वर्गे दुर्गमतामुपेयुषि भृशं दुर्गेऽपवर्गे सति।  
वर्गे देहभृतां निसर्ग मलिने जातोपसर्गेऽखिले  
सर्गे विश्वसृजस्तदीयवपुषा भर्गोऽवतीर्णो भुवि।।

अर्थ:- " सनातन संस्कृति के पुरोध्या सनकादि महर्षियों का प्राथमिक सर्ग जब उपरति को प्राप्त हो गया , अभ्युदय तथा निःश्रेयसप्रद वैदिक सन्मार्ग की दुर्गति होने लगी , फलस्वरूप स्वर्ग दुर्गम होने लगा ,अपवर्ग अगम हो गया , तब इस भूतल पर भगवान भर्ग ( शिव ) शंकर रूप से अवतीर्ण हुये। " भगवान शिव द्वारा कलियुग के प्रथम चरण में अपने चार शिष्यों के साथ जगद्गुरु आचार्य शंकर के रूप में अवतार लेने का वर्णन पुराणशास्त्र में भी वर्णित हैं जो इस प्रकार हैं :-

कल्यब्दे द्विसहस्रान्ते लोकानुग्रहकाम्यया।

चतुर्भिः सह शिष्यैस्तु शंकरोऽवतरिष्यति।। ( भविष्योत्तर पुराण ३६ )

अर्थ :- " कलि के दो सहस्र वर्ष व्यतीत होने के पश्चात लोक अनुग्रह की कामना से श्री सर्वेश्वर शिव अपने चार शिष्यों के साथ अवतार धारण कर अवतरित होते हैं। "

निन्दन्ति वेदविद्यां च द्विजाः कर्माणि वै कलौ।

कलौ देवो महादेवः शंकरो नीललोहितः।।

प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः।

ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शंकरम्।।

कलिदोषान्विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्। (लिंगपुराण ४०. २०-२१.१/२)

अर्थ:- " कलि में ब्राह्मण वेदविद्या और वैदिक कर्मों की जब निन्दा करने लगते हैं ; रुद्र संज्ञक विकटरूप नीललोहित महादेव धर्म की प्रतिष्ठा के लिये अवतीर्ण होते हैं। जो ब्राह्मणादि जिस किसी उपाय से उनका आस्था सहित अनुसरण सेवन करते हैं ; वे परमगति को प्राप्त होते हैं। "

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः।

न देवता भवेन्नुणां देवतानां च दैवतम्।।

करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः।

श्रौतस्मार्त्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया।।

उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मासंज्ञितम्।

सर्ववेदान्तसारं हि धर्मानं वेदान्दर्शितानम्।।

ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारतः।

विजित्य कलिज्ञान दोषान यान्ति ते परमं पदम्।। ( कूर्मपुराण १.२८.३२-३४)

अर्थ:- " कलि में देवों के देव महादेव लोकों के परमेश्वर रुद्र शिव मनुष्यों के उद्धार के लिये उन भक्तों की हित की कामना से श्रौत-स्मार्त्त -प्रतिपादित धर्म की प्रतिष्ठा के लिये विविध अवतारों को ग्रहण करेंगे। वे शिष्यों को वेदप्रतिपादित सर्ववेदान्तसार ब्रह्मज्ञानरूप मोक्ष धर्मों का उपदेश करेंगे। जो ब्राह्मण जिस किसी भी प्रकार उनका सेवन करते हैं ; वे कलिप्रभव दोषों को जीतकर परमपद को प्राप्त करते हैं। " व्याकुर्वन् व्याससूत्रार्थं श्रुतेरर्थं यथोचिवान्।

श्रुतेन्यायः स एवार्थः शंकरः सविताननः।। ( शिवपुराण- रुद्रखण्ड ७.१)

अर्थ:- "सूर्यसदृश प्रतापी श्री शिवावतार आचार्य शंकर श्री बादरायण - वेदव्यासविरचित ब्रह्मसूत्रों पर श्रुतिसम्मत युक्तियुक्त भाष्य संरचना करते हैं। "

महत्त्व

शंकराचार्य के विषय में कहा गया है-

अष्टवर्षेचतुर्वेदी,

द्वादशेसर्वशास्त्रवित्

षोडशेकृतवान्भाष्यमूत्रात्रिंशेमुनिरभ्यगात्

अर्थात् आठ वर्ष की आयु में चारों वेदों में निष्णात हो गए, बारह वर्ष की आयु में सभी शास्त्रों में पारंगत, सोलह वर्ष की आयु में शांकरभाष्यतथा बत्तीस वर्ष की आयु में शरीर त्याग दिया। ब्रह्मसूत्र के ऊपर शांकरभाष्यकी रचना कर विश्व को एक सूत्र में बांधने का प्रयास भी शंकराचार्य के द्वारा किया गया है, जो कि सामान्य मानव से सम्भव नहीं है। शंकराचार्य के दर्शन में सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म दोनों का हम दर्शन, कर सकते हैं। निर्गुण ब्रह्म उनका निराकार ईश्वर है तथा सगुण ब्रह्म साकार ईश्वर है। जीव अज्ञान व्यष्टि की उपाधि से युक्त

है। तत्त्वमसि तुम ही ब्रह्म हो; अहं ब्रह्मास्मि मैं ही ब्रह्म हूं; 'अयामात्मा ब्रह्म' यह आत्मा ही ब्रह्म है; इन बृहदारण्यकोपनिषद् तथा छान्दोग्योपनिषद् वाक्यों के द्वारा इस जीवात्मा को निराकार ब्रह्म से अभिन्न स्थापित करने का प्रयत्न शंकराचार्य जी ने किया है। ब्रह्म को जगत् के उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का निमित्त कारण बताए हैं। ब्रह्म सत् (त्रिकालाबाधित) नित्य, चैतन्यस्वरूप तथा आनंद स्वरूप है। ऐसा उन्होंने स्वीकार किया है। जीवात्मा को भी सत् स्वरूप, चैतन्य स्वरूप तथा आनंद स्वरूप स्वीकार किया है। जगत् के स्वरूप को बताते हुए कहते हैं कि -

**नामरूपाभ्यां व्याकृतस्य अनेककर्तृभोक्तृसंयुक्तस्य प्रतिनियत  
देशकालनिमित्तक्रियाफलाश्रयस्य मनसापि  
अचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभंगंयतः।**

अर्थात् नाम एवं रूप से व्याकृत, अनेक कर्ता, अनेक भोक्ता से संयुक्त, जिसमें देश, काल, निमित्त और क्रियाफल भी नियत हैं। जिस जगत् की सृष्टि को मन से भी कल्पना नहीं कर सकते, उस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय जिससे होता है, उसको ब्रह्म कहते हैं। सम्पूर्ण जगत् के जीवों को ब्रह्म के रूप में स्वीकार करना, तथा तर्क आदि के द्वारा उसके सिद्ध कर देना, आदि शंकराचार्य की विशेषता रही है। इस प्रकार शंकराचार्य के व्यक्तित्व तथा कृतित्वके मूल्यांकन से हम कह सकते हैं कि राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने का कार्य शंकराचार्य जी ने सर्वतोभावेन किया था। भारतीय संस्कृति के विस्तार में भी इनका अमूल्य योगदान रहा है।

## तिथियाँ

आदि गुरु शंकराचार्य का जन्म केरल के कालाडी नामक ग्राम में हुआ था। वह अपने ब्राह्मण माता-पिता की एकमात्र सन्तान थे। बचपन में ही उनके पिता का देहान्त हो गया। शंकर की रुचि आरम्भ से ही सन्यास की तरफ थी। अल्पायु में ही आग्रह करके माता से सन्यास की अनुमति लेकर गुरु की खोज में निकल पड़े। वेदान्त के गुरु गोविन्द नाथ से ज्ञान प्राप्त करने के बाद सारे देश का भ्रमण किया। मिथिला के प्रमुख विद्वान मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में हराया। परन्तु मण्डन मिश्र की पत्नी भारती के द्वारा पराजित हुए। दुबारा फिर रति विज्ञान में पारंगत होकर भारती को पराजित किया।

उन्होंने तत्कालीन भारत में व्याप्त धार्मिक कुरीतियों को दूर कर अद्वैत वेदान्त की ज्योति से देश को आलोकित किया। सनातन धर्म की रक्षा हेतु उन्होंने भारत में चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की तथा शंकराचार्य पद की स्थापना करके उस पर अपने चार प्रमुख शिष्यों को आसीन किया। उत्तर में ज्योतिर्मठ, दक्षिण में श्रन्गेरी, पूर्व में गोवर्धन तथा पश्चिम में शारदा मठ नाम से देश में चार धामों की स्थापना की। ३२ साल की अल्पायु में पवित्र केदार नाथ धाम में शरीर त्याग दिया। सारे देश में शंकराचार्य को सम्मान सहित आदि गुरु के नाम से जाना जाता है।

## जीवन

एक संन्यासी बालक, जिसकी आयु मात्र ७ वर्ष थी, गुरुगृह के नियमानुसार एक ब्राह्मण के घर भिक्षा माँगने पहुँचा। उस ब्राह्मण के घर में भिक्षा देने के लिए अन्न का दाना तक न था। ब्राह्मण पत्नी ने उस बालक के हाथ पर एक आँवला रखा और रोते हुए अपनी विपन्नता का वर्णन किया। उसकी ऐसी अवस्था देखकर उस प्रेम-दया मूर्ति बालक का हृदय द्रवित हो उठा। वह अत्यंत आर्त स्वर में माँ लक्ष्मी का स्तोत्र रचकर उस परम करुणामयी से निर्धन ब्राह्मण की विपदा हरने की प्रार्थना करने लगा। उसकी प्रार्थना पर प्रसन्न होकर माँ महालक्ष्मी ने उस परम निर्धन ब्राह्मण के घर में सोने के आँवलों की वर्षा कर दी। जगत् जननी महालक्ष्मी को प्रसन्न कर उस ब्राह्मण परिवार की दरिद्रता दूर करने वाला, दक्षिण के कालाडी ग्राम में जन्मा वह बालक था- "शंकर", जी आगे चलकर "जगद्गुरु शंकराचार्य" के नाम से विख्यात हुआ। इस महाज्ञानी शक्तिपुंज बालक के रूप में स्वयं भगवान शंकर ही इस धरती पर अवतीर्ण हुए थे। इनके पिता शिवगुरु नामपुत्रि के यहाँ विवाह के कई वर्षों बाद तक जब कोई संतान नहीं हुई, तब उन्होंने अपनी पत्नी विशिष्टादेवी के साथ पुत्र प्राप्ति की कामना से दीर्घकाल तक चंद्रमौली भगवान शंकर की कठोर आराधना की। आखिर प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए और कहा- 'वर माँगो।' शिवगुरु ने अपने ईष्ट गुरु से एक दीर्घायु सर्वज्ञ पुत्र माँगा। भगवान शंकर ने कहा- 'वत्स, दीर्घायु पुत्र सर्वज्ञ नहीं होगा और सर्वज्ञ पुत्र दीर्घायु नहीं होगा। बोलो तुम कैसा पुत्र चाहते हो?' तब धर्मप्राण शास्त्रसेवी शिवगुरु ने सर्वज्ञ पुत्र की याचना की। औढरदानी भगवान शिव ने पुनः कहा- 'वत्स तुम्हें सर्वज्ञ पुत्र की प्राप्ति होगी। मैं स्वयं पुत्र रूप में तुम्हारे यहाँ अवतीर्ण होऊँगा।'

कुछ समय के पश्चात वैशाख शुक्ल पंचमी (कुछ लोगों के अनुसार अक्षय तृतीया) के दिन मध्याह्न में विशिष्टादेवी ने परम प्रकाशरूप अति सुंदर, दिव्य कांतियुक्त बालक को जन्म दिया। देवज्ञ ब्राह्मणों ने उस बालक के मस्तक पर चक्र चिन्ह, ललाट पर नेत्र चिन्ह तथा स्कंध पर शूल चिन्ह परिलक्षित कर उसे शिव अवतार निरूपित किया और उसका नाम 'शंकर' रखा। इन्हीं शंकराचार्य जी को प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ल पंचमी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए श्री शंकराचार्य जयंती मनाई जाती है। जिस समय जगद्गुरु शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ, उस समय भरत में वैदिक धर्म म्लान हो रहा था तथा मानवता बिसर रही थी, ऐसे में आचार्य शंकर मानव धर्म के भास्कर प्रकाश स्तम्भ बनकर प्रकट हुए। मात्र ३२ वर्ष के जीवन काल में उन्होंने सनातन धर्म को ऐसी ओजस्वी शक्ति प्रदान की कि उसकी समस्त मूर्छा दूर हो गई। शंकराचार्य जी तीन वर्ष की अवस्था में मलयालम का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इनके पिता चाहते थे कि ये संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें। परंतु पिता की अकाल मृत्यु होने से शैशवावस्था में ही शंकर के सिर से पिता की छत्रछाया उठ गई और सारा बोझ शंकर जी की माता के कंधों पर आ पड़ा। लेकिन उनकी माता ने कर्तव्य पालन में कमी नहीं रखी। पाँच वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाकर वेदों का अध्ययन करने के लिए गुरुकुल भेज दिया गया। ये प्रारंभ से ही प्रतिभा संपन्न थे, अतः इनकी प्रतिभा से इनके गुरु भी बेहद चकित थे। अप्रतिम प्रतिभा संपन्न श्रुतिधर बालक शंकर ने मात्र २ वर्ष के समय में वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ कंठस्थ कर लिए। तत्पश्चात गुरु से सम्मानित होकर घर लौट आए और माता की सेवा करने लगे। उनकी मातृ शक्ति इतनी विलक्षण थी कि उनकी प्रार्थना पर आलवाई (पूर्णा) नदी, जो उनके गाँव से बहुत दूर बहती थी, अपना रुख बदल कर कालाड़ी ग्राम के निकट बहने लगी, जिससे उनकी माता को नदी स्नान में सुविधा हो गई। कुछ समय बाद इनकी माता ने इनके विवाह की सोची। पर आचार्य शंकर गृहस्थी के झंझट से दूर रहना चाहते थे। एक ज्योतिषी ने जन्म-पत्री देखकर बताया भी था कि अल्पायु में इनकी मृत्यु का योग है। ऐसा जानकर आचार्य शंकर के मन में संन्यास लेकर लोक-सेवा की भावना प्रबल हो गई थी। संन्यास के लिए उन्होंने माँ से हठ किया और बालक शंकर ने ७ वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण कर लिया। फिर जीवन का उच्चतम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए माता से अनुमति लेकर घर से निकल पड़े।

आचार्य शंकर के जीवन का एक दिन--माताश्री आर्याम्बा के जीवन के अन्तिम क्षणों में उनके पास पहुँचने के लिए आचार्य शंकर वागवद्ध हैं। 'कालः क्रीडा गच्छत्यायु' सिद्धान्तानुसार यह क्षण उदित होता है। योगबल से आचार्य शंकर को इसका पूर्वाभास हो जाता है। चल देते हैं वे केरल के कालटी स्थित अपने ग्राम की ओर। ग्राम सीमा में प्रवेश करते ही स्मृतियों की आंधी पूरी तरह उन्हें घेर लेती है। 'अरे, यही तो अलवाई ( पूर्णा ) नदी है। इसी में स्नान करते समय मुझे मगरमच्छ ने पकड़ लिया था। माताश्री से मेरे संन्यास की अनुज्ञा मिलने पर ही उसने मुझे मुक्त किया था। कितनी विवशता थी अनुज्ञा देते समय उनके मन में। मैं उनका एकमात्र संतान। वह भी संन्यासोन्मुख। वंश श्रृंखला के उच्छिन्न होने की स्थिति। एकाकिनी माता की सेवा-सुश्रुवा की समस्या। फिर भी उन्होंने मुझे संन्यास की अनुमति दी।' यही सब सोचते-सोचते पहुँच जाते हैं आचार्य अपने घर के दरवाजे पर। आचार्य की आहट पाकर गृहसेविका दरवाजा खोलती है। आचार्य सीधे पहुँचते हैं मातृशैया के पास। संन्यासी रूप में पुत्र को देखकर माता के नेत्रों से अश्रुविन्दु ढलकने लगते हैं। इसी क्रम में माता का प्राणान्त हो जाता है। माताश्री के प्राण अपने संन्यासी पुत्र की उत्कट प्रतीक्षा में ही अटके थे। इधर आँखें पुत्र का दर्शन करती हैं उधर दूसरे ही क्षण प्राण अपनी निष्कर्षण क्रिया से उनकी काया को शव का रूप दे देते हैं। आचार्य शंकर ने संन्यास की दीक्षा ली है, वे परिव्राजक हो गये हैं। शास्त्रानुसार वे अग्नि स्पर्श नहीं कर सकते। उनके सामने एक भयंकर धर्मसंकट सुरसा की भांति मुँह बाये खड़ा हो जाता है। यदि वे माताश्री को मुखाग्नि देते हैं तो संन्यास धर्म से च्युत होते हैं। यदि मुखाग्नि नहीं देते तो पुत्र धर्म से विमुख होते हैं। कुछ समय के लिए आचार्य का संन्यासी चित्त उनके मन से कूदकर भाग जाता है। उसके स्थान पर सामान्य चित्त का प्रवेश हो जाता है। मातृ शव को देखकर वे एक सामान्य मानव की भांति विलखने लगते हैं। माताश्री के हाथों को अपने हाथ में लेकर अतीत में खो जाते हैं। सोचते हैं 'इन्हीं हाथों से मेरी इतनी सेवा की थी। आज ये हाथ इतने परवश हो गये हैं। बचपन में पूर्णा नदी में वे इन्हीं हाथों से मुझे मल-मल कर नहलाती थी। खिलाते समय साथी बच्चों के साथ मैं खेलने के लिए भाग जाता था। वे मुझे दौड़कर पकड़ लाती थीं और इन्हीं हाथों से खिलाती थीं। इन्हीं हाथों से वे प्रतिदिन मेरे शरीर पर तैलमर्दन करती थीं। जब पिताश्री ( शिवगुरु ) का देहांत हो गया तो माताश्री मेरे मन सहारे अपना शेष जीवन बिताना चाहती थी। पर मेरे संन्यासी होने के पश्चात वे पूरी तरह से टूट गयीं। मेरे अभाव में उनका मात्र एक ही कार्य रह गया था, मृत्यु की प्रतीक्षा।' आचार्य शंकर अतीत से वर्तमान में उतरते हैं। इसी समय गृहसेविका उनके

कान में फुसफुसाती है, 'माताश्री के अंत्येष्टि क्रिया में आपके नम्बूदरी परिवार के लोग भाग नहीं लेंगे। उनके असहयोग का कारण यह है कि वे आपके इस कृत्य को शास्त्र विरुद्ध और परम्परा विरुद्ध मानते हैं। कहते हैं 'सन्यासी जब गृह त्याग कर देता है तो उसका गृह प्रपंच में लौटना शास्त्र विरुद्ध है। अग्नि स्पर्श उसके लिये सर्वथा वर्जित है। हम लोग ऐसे शास्त्र विरुद्ध कार्य में आचार्य शंकर का साथ नहीं दे सकते। सेविका की बात सुनकर आचार्य एक क्षण के लिए उद्विग्न हो जाते हैं। उनकी समझ में नहीं आता है कि अकेले वे माता का शव लेकर श्मशान तक कैसे जायेंगे। कुछ समय के लिए वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। सहसा उनके मन में एक समाधान कौंधता है। 'माताश्री के शव को श्मशान घाट पर न ले जाकर यदि गृह परिसर में ही अंत्येष्टि कर दी जाय तो इसमें क्या आपत्ति हो सकती है।' ऐसा कुछ भाव आचार्य के मन में आता है। सगोत्री लोग दूर से ही आचार्य की द्विविधा का आनन्द ले रहे हैं। विपत्ति के इन क्षणों में कोई उनका साथ नहीं देता है। अन्ततः आचार्य शंकर अपने घर के सामने ही चिता सजाते हैं। किसी तरह माता के शव को चिता पर स्थापित करते हैं। हाथ में अग्निशिखा लेकर चिता की परिक्रमा करते हुए शव को मुखाग्नि देते हैं। आचार्य गृह परिसर को ही श्मशानघर में परिवर्तित कर देते हैं। चिता से उठी लपटों को देखकर आचार्य को लगता है जैसे अग्नि देव उनकी माता के सूक्ष्म शरीर को लेकर पित्रलोक की ओर प्रयाण कर रहे हैं। क्रमशः चिता की लपटें शान्त हो जाती हैं पर आचार्य का मन अपने सगोत्रियों के लिए खिन्न हो जाता है। सोचते हैं, इतनी भारी विपत्तियों में हमारे सगोत्रियों ने सहानुभूति का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। आचार्य शंकर की इसी मानसिकता से एक शाप शब्द होता है, "अब इस गोत्र के लोग मेरी तरह शवदाह श्मशान घाट पर न करके अपने घर के सामने ही करेंगे।" 'मृषा न होइ देव ऋषि वाणी' सिद्धान्त के अनुसार केरल के कालटी ग्राम में नंबूदरी ब्राह्मणों में आज भी शव-दाह घर के सामने ही किया जाता है।

सहायकग्रन्थसूची

1. अद्वैतवेदान्त इतिहास तथा सिद्धान्त – ड. राममूर्तिशर्मा – दिल्ली – 1998.
2. अद्वैततत्त्वमीमांसा – अभेदानन्द भट्टाचार्यः – परिमल प्रकाशन – दिल्ली 1664 .

3. शङ्करदर्शनमर्मप्रकाशः - पण्डितप्रवर कृष्णजोयिस् – सम्पादकः - एम्.एल्.एन्.मूर्तिः, राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपतिः, 1996.
4. श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्यम् - व्यासदेवः - गीताप्रेस, गोरखपुर – 1982.
5. श्रीशङ्करातप्रागद्वैतवादः - मूरलीधर पाण्डेयः - भारतीयविद्याप्रकाशन 1686.
6. सिद्धान्तशिक्षामणि समीक्षा-चन्द्रशेखर शर्मा, वाराणसी, 1989.
7. संस्कृतवाङ्मयका वृहद् इतिहास – बलदेव उपाध्यायः – उत्तरप्रदेश संस्कृतसंस्थान – 1996.
8. A History of Indian Philosophy – Surendranath dasgupta.
9. Advaita Vedanta literature – A Bibliographical Survey by R.Thangaswami- University of madras. 1980.
10. History of Indian Philosophy – S. Radhakrishnan.